दृष्टि
The Vision

पुस्तिका सं. (Sheet No.)

(2)

उत्तर पुस्तिका (Answer Sheet)

नाम (Name) कौशलेन्द्र विक्रम सिंह
विषय (Subject) हिन्दी साहित्य तिथि (Date)
पता (Address) फोन नं. (Phone No.)

प्रश्न। हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता पर निबंध लिखिए।

उत्तर-। मानव जीवन में बढ़ते हुए वैज्ञानिक प्रभाव को देखकर कई विचारकों ने यह धारणा व्यक्त की कि वर्तमान में साहित्य का अध्ययन पूर्णतः अप्रासंगिक हो गया है। साहित्य न तो किसी उत्पादक गतिविधि का सृजन करता है और न ही भौतिक जीवन को सुविधासम्पन्न बनाता है। टामस लौ पीकॉक ने तो साहित्यकार की तुलना 'अर्ध बर्बर पशु' से कर डाली। परंतु, यह जीवन को देखने की स्थूल दृष्टि है। मानव जीवन का यदि एक भौतिक पक्ष है, तो दूसरा आंतरिक पक्ष भी। यदि यह आंतरिक पक्ष अपनी सुंदरता खो दे, तो मानव और प्रकृति के दूसरे जीवों में कोई भेद नहीं रह जाएगा। साहित्य की सार्थकता मानव के इसी पक्ष को सुंदर बनाने में है।

वास्तव में, कोई भी साहित्य हो, वह व्यक्ति को संवेदनशील बनाने का कार्य करता है। संवेदनशील मानव ही अपने आस-पास रहने वाले दूसरे मनुष्यों, जीव-जंतुओं तथा प्रकृति के अन्य तत्वों की वेदना का अनुभव कर सकता है। इसका कारण यह है कि साहित्य का सृजन ही संवेदनशीलता के

कृपया इस स्थान में कुछ न लिखें। (Please don't write anything in this space)

धरातल पर होता है। आज, जब समाज में हिंसा, वैमनस्य बढ़ता जा रहा है, प्राकृतिक पर्यावरण को क्षति पहुंचाने में कोई कोर कसर बाकी नहीं रह रही है, तब साहित्य की सार्थकता और भी बढ़ गयी है। सुमित्रानंदन पंत ने ठीक ही लिखा था -

"वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आंखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।"

एक अन्य दृष्टि से देखें, तो साहित्य समाज के व्यापक हित को धारण करने की दृष्टि से भी प्रासंगिक है यह साहित्य ही है, जो अपने समाज की समस्या को निर्भीकता के साथ उजागर करता है। वह यथास्थितिवादी तथा प्रगतिशील विरोधी शक्तियों से सीधी मुठभेड़ करता है, तो साथ ही साथ सामाजिक परिवर्तन का भी आह्वान करता है। कबीर को सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों तथा बाह्य आडम्बर से घोर चिढ़ है, तो भारतेन्दु, नागार्जुन व मुक्तिबोध का साहित्य भी समकालीन समाज में निहित विसंगतियों को ही उजागर करता है। धूमिल ने निडर होकर पूछा था कि -

"क्या आजादी / तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिसे एक पहिया ढोता है
या आजादी का कुछ और भी मतलब होता है।"

वहीं, दिनकर ने परिवर्तन का आह्वान कुछ यूं किया था -

"जब तक न देश के घर-घर में रेशम होगा
तब तक दिल्ली के तन पर भी खादी होगी।"

निःसंदेह अपने समाज की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों को एक साहित्यकार तटस्थ होकर देख नहीं सकता, वरन् वह तो इन स्थितियों की गम्भीर समीक्षा करता है।

साथ ही साथ वह स्थितियों को बदलने के लिए महत्वपूर्ण समाधान तथा दिशा-निर्देश भी लेकर आता है। इसका बल इस बात पर होता है कि यदि सुधार आसानी से नहीं हो रहे हैं, तो सम्पूर्ण जनता को मिलकर प्रयास करना चाहिए —

"हो गयी है पीर पर्वत सी, पिघलनी चाहिए
* * * *
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।"
— दुष्यंत कुमार

'औरों को हंसते देखो मनु हंसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ"
— कामायनी

इतना होने के साथ-2 साहित्य स्वस्थ मनोरंजन का साधन भी है। इसका आशय यह है कि एक ओर इससे व्यक्ति का मनोरंजन होता है, तो दूसरी ओर नैतिक उत्कर्ष भी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता क्या है, में यह स्पष्ट किया है कि मनोरंजन के बीच में ही साहित्यकार पाठकों तक अपने मूल मंतव्य को पहुंचा सकता है। बिहारी, भगवती चरण वर्मा, हरिवंश राय बच्चन जैसे कई साहित्यकारों के प्रयास इस दिशा में सराहनीय हैं। भगवती चरण वर्मा तो पाठकों को पूरी मस्ती की अवस्था में ले जाना चाहते हैं क्योंकि 'मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहां चले'।

एक अन्य तथ्य यह भी है कि हिन्दी साहित्य ने जीवन के प्रति गम्भीर दृष्टि प्रदान की है। साहित्य का अध्ययन व्यक्ति को स्थूल सोच से बचाता है तथा वह व्यक्ति को स्थितियों, घटनाओं के प्रति सूक्ष्म समझ विकसित करने में मदद देता है। यही वह समझ है जिसके माध्यम से मनुष्य में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना आती है, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का उद्देश्य जाग्रत होता है तथा

कृपया इस स्थान में कुछ न लिखें। (Please don't write anything in this space)

मनुष्य, वास्तविक दृष्टि से मनुष्यत्व की अवस्था प्राप्त कर पाता है। इसी आंतरिक दृष्टि के कारण तुलसीदास पूरी सृष्टि को ही 'राम मय' अनुभव कर सके, अहं भाव को दूर हटा सके और नये समाज का आदर्श सामने प्रस्तुत करने में सफल रहे।

आज जब भौतिकवादी समाज में व्यक्ति अकेलेपन का शिकार है, जिसे सार्त्र 'अमानवीकरण', आचार्य शुक्ल 'प्रच्छन्नताओं का आवरण', प्रसाद 'विषमता' तथा एरिक फ्राम 'नैतिक अकेलापन' कहते हैं, तो साहित्य की प्रासंगिकता अत्यधिक बढ़ जाती है। साहित्य ही वह साधन है, जब व्यक्ति अप्रामाणिक होती ज़िंदगी में प्रामाणिकता की तलाश कर सकता है। साहित्य के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करके प्रच्छन्नता का आवरण उतार सकता है।

और अंततोगत्वा, हिन्दी साहित्य की समृद्ध परम्परा ने केवल भाषा को ही नहीं अपितु लगभग 700 ई० से 2000 ई० के बीच तक लम्बी सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत को भी अक्षुण्ण बनाये रखा है। हम यदि यह मान लें कि हिन्दी साहित्य पर अपनी पूर्व परम्पराओं का भी गम्भीर प्रभाव रहा है, तो यह समयान्तराल और पीछे तक जा सकता है। हम अपनी इस सांस्कृतिक विरासत का अनुकरण करके ही एक 'बहुलतावादी - पंथ निरपेक्ष' समाज का निर्माण करने में कामयाब हो सके हैं। गंगा-जमुनी

अंततोगत्वा

कृपया इस स्थान में कुछ न लिखें। (Please don't write anything in this space)

कृपया इस स्थान में कुछ न लिखें
(Please don't write anything in this space)

तहज़ीब को कुछ यूं व्यक्त किया गया है—

"यूनान मिस्र रूमा सब मिट गये जहाँ से
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
दुश्मन रहा है जब कि दौरे ज़मां हमारा।"

इस हस्ती का संरक्षण, संवर्धन हमारे विपुल साहित्य भण्डार ने ही किया है।

निष्कर्षतः, यह कहना ठीक होगा कि विज्ञान मानव के एक पक्ष को सुंदर बनाता है, तो साहित्य दूसरे पक्ष को। ये दोनों पक्ष मिलकर ही सम्पूर्ण इंसान का निर्माण करते हैं। अतः साहित्य की प्रासंगिकता मानव का पेट भरने में नहीं, अपितु उसे इंसान बनाने में है।

(लगभग 850 शब्द)

समय - 50 मिनट

37-38

IAS ACADEMY

कृपया इस स्थान में कुछ न लिखें
(Please don't write anything in this space)

प्रश्न सिद्ध तथा नाथ साहित्य की तुलना कीजिए। बताइए कि आप रासो साहित्य को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं या धार्मिक साहित्य को ?

उत्तर:- आदि काल में हमें साहित्य की विविध प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। बौद्ध धर्म से प्रभावित सिद्ध साहित्य तथा नाथ साहित्य इन्हीं प्रवृत्तियों में से एक प्रमुख महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। सिद्ध साहित्य जहाँ वज्रयानी सिद्धों की 'भोगवादी साधना' पद्धति का प्रतीक है, वहीं नाथ साहित्य 'हठयोग आधारित निवृत्तिमार्गी' साधना पद्धति का प्रतीक है। ऐसा कहा जाता है कि अंतिम सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ ने नाथपंथी सम्प्रदाय की आधारशिला रखी तथा अपने गुरु को भोगवाद छोड़ने की प्रेरणा दी: 'जाग मछिन्दर गोरख आया'।

सिद्ध तथा नाथों में समानता के कई महत्वपूर्ण बिन्दु उल्लेखनीय हैं। मसलन, दोनों ही सम्प्रदायों ने अपनी साम्प्रदायिक मान्यताओं को व्यक्त करने के लिए 'संध्या' भाषा का प्रयोग किया, जिसमें प्रतीकात्मकता तथा अक्खड़पन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यही नहीं, इनकी धार्मिक मान्यताओं में 'गुरु' को एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया। साथ ही परम्परागत वैदिक कर्मकाण्डों, सामाजिक वैषम्य और वर्णव्यवस्था पर दोनों ही सम्प्रदायों ने कठोर प्रहार किये। ब्राह्मणों द्वारा अंतरमन में बसे हुए 'ईश्वर' को न पहचान पाने की सिद्धों ने तीव्र भर्त्सना की-

'पंडिअ सअल सत्त बक्खाणअ
देहहिं बुद्ध बसंत ण जाणअ।'

यही नहीं, शिल्पगत दृष्टि से भी दोनों ही सम्प्रदायों ने प्रारम्भिक हिन्दी साहित्य को पर्याप्त समृद्धि प्रदान की। हालांकि यह सत्य है कि ये कभी किसी साहित्यिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए रचना

I A S ACADEMY दृष्टि The Vision

नहीं कर रहे थे, जिसके कारण इनकी रचनाओं में साहित्यिक प्रतिबद्धता की कमी दिखाई देती है, फिर भी नये-2 छंदों द्वारा साहित्य को समृद्धता प्रदान करने का श्रेय इन्हें दिया ही जाना चाहिए। इनकी भाषा सामान्यतः अपभ्रंश से निकली प्रारम्भिक हिन्दी है। कहीं-2 मुक्तकों में इन्होंने बिम्बों, प्रतीकों तथा भाव प्रवाह का इतना ध्यान रखा है कि ~~ऐसी~~ रचनाएँ अत्यंत उच्च स्तर तक पहुंच गयी हैं।

"जोगी सोई जाणिये जग तैं रहे उदास
तत निरंजन पाइये, कहै मछंदरनाथ।"

परंतु, इन समानताओं के बाद भी असमानता के बिन्दु भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। वस्तुतः इस असमानता, तो इनकी साधना पद्धति में ही निहित है। जहां सिद्धों के लिए पंचमकारों - मत्स्य, मैथुन, मदिरा, मांस, मुद्रा का विशेष महत्व है तथा ये गृहस्थ जीवन में रहकर भी निर्वाण प्राप्ति का समर्थन करते हैं, वहीं नाथपंथी योगी, आत्म संयम, ब्रह्मचर्य, हठयोग इत्यादि से युक्त निवृत्तिमार्गी जीवन पद्धति के समर्थक हैं। इसका कारण यह है कि सिद्ध जहां महायान शाखा से ही प्रभावित हैं, वहीं नाथों के ऊपर शैव सम्प्रदाय का भी प्रभाव है। इनका यही दृष्टिकोण नारी के प्रति भी व्यक्त हुआ है। जहां सिद्धों के लिए नारी भोग्या है, वहीं नाथों के लिए त्याज्य। गोरखनाथ के शब्दों में -

"नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसो मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडार।"

वास्तव में इन दोनों ही सम्प्रदायों ने परवर्ती भक्तिकालीन निर्गुणधारा के कवियों को विशेष रूप से प्रभावित किया। कबीर के व्यक्तित्व में यदि आडम्बरों का विरोध है, सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग है, अक्खड़पन है — ये निश्चित रूप से यह सिद्धों और नाथों की दीर्घ परम्परा का ही प्रभाव ही है।

जहाँ तक यह प्रश्न कि रासो काव्य या इन सिद्धों और नाथों के काव्य में किसे ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाये, तो इसके लिए हमें कुछ प्रतिमान तय करने होंगे। पहला प्रतिमान यह हो सकता है कि कौन सा साहित्य लोक जीवन से जुड़ा हुआ है? कौन सा साहित्य समाज के व्यापक हित को धारण करता है? कौन सा साहित्य अधिक प्रमाणिक है? और अंततोगत्वा कौन सा साहित्य शिल्पगत दृष्टि से साहित्य की परम्परा को गहराई प्रदान करने वाला है?

वैसे तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस धार्मिक साहित्य को यह कहकर साहित्य ही मानने से इंकार कर दिया कि इसमें केवल साम्प्रदायिक मान्यताएँ मात्र मिलती हैं, परंतु यदि सूक्ष्म अवलोकन किया जाये तो यह भले ही उच्च स्तर का न सही, पर साहित्य तो अवश्य माना जाना चाहिए।

प्रथम कसौटी पर रासो साहित्य की तुलना में धार्मिक साहित्य अधिक फिट बैठता है। रासो साहित्य में केवल दरबारी जीवन से जुड़े ऐश्वर्य लीला, श्रृंगार इत्यादि का वर्णन हुआ है। रासो साहित्य लोक जीवन से कटा हुआ साहित्य है, जहाँ सिवाय अतिशयोक्ति के कुछ भी नहीं दिखता। इसके विपरीत

IAS ACADEMY
दृष्टि
The Vision

धार्मिक साहित्य में लोक की भावनाएं स्पष्ट/अभिव्यक्त हुई हैं। लोक में जो तंत्र-मंत्र, टोना-टोटका इत्यादि प्रचलित थे, उनका इन योगियों पर गम्भीर प्रभाव पड़ा था।

साथ ही, सामाजिक हित को ध्यान करने की दृष्टि से भी यह साहित्य महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह साहित्य सामाजिक विषमता, वर्णव्यवस्था इत्यादि पर खुलकर प्रहार करता है। यही नहीं यदि प्रमाणिकता की दृष्टि से देखें तो वीरगाथा साहित्य की तुलना में इसकी प्रमाणिकता कहीं ज्यादा है। यही कारण है कि शुक्ल जी के विपरीत डॉ. नामवर सिंह धार्मिक प्रवृत्ति को ही इस काल की अधिक प्रमाणिक प्रवृत्ति मानते हैं।

परंतु शिल्पगत दृष्टि से वीरगाथा साहित्य कहीं अधिक समृद्ध है। धार्मिक साहित्य में न केवल अप्रतीकत्व का दोष विद्यमान है बल्कि ये रचनाएँ लोगों के मर्म को छूने में भी असमर्थ हैं। इसके विपरीत वीरगाथा साहित्य में श्रृंगार एवं वीरता का सुंदर वर्णन मिलता है, जिसमें नवीनता और जीवंतता दोनों ही तत्व घुले हुए हैं। यह वीरगाथा साहित्य की विशेषता के कारण आज भी लोकप्रिय है।

कुल मिलाकर यह कहना अधिक न्यायसंगत होगा कि साहित्य की प्रासंगिकता मौलिकरूप से इस बात में है कि वह साहित्य लोकहित को कितना धारण करता है और लोक के कितना करीब है। इस कसौटी पर तो धार्मिक साहित्य ही खरा उतरता है। इसलिए सिद्ध-नाथ साहित्य, रासो साहित्य की तुलना में ज्यादा प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है।

शब्द 800+

— शैलेन्द्र विक्रम सिंह (40 मिनट)

कौशलेन्द्र विक्रम सिंह (352वाँ स्थान), I.A.S.-2008

प्रश्न- कामायनी की प्रासंगिकता पर विचार करें।

उत्तर⇒

किसी भी साहित्यिक कृति का महत्व केवल इस बात में नहीं होता कि वह रचना तत्कालीन समाज की समस्याओं और प्रश्नों से टकराती हो अपितु उसका महत्व तो इस बात में होता है कि उसके प्रश्न समय का अतिक्रमण करने में सक्षम हों। इस दृष्टि से प्रसाद की 'कामायनी' उन सवालों को उठाती है, जो पिछड़े औद्योगिक होते हुए समाज के सामने पैदा हो रहे थे और जो आज के उत्तर-औद्योगिक समाज के सामने और भी विकराल हो गये हैं। यहाँ रचना सवालों से टकराने के साथ-साथ समाधान भी प्रस्तुत करती है कि कैसे मानव के विषमतापूर्ण जीवन को समरस और आनंदयुक्त बनाया जा सकता है। इसलिए प्रसिद्ध आलोचक डॉ० नामवर सिंह के शब्दों को उधार लेते हुए कहा जा सकता है कि 'कामायनी के रूपक प्राचीन हैं भाव शाश्वत हैं और समस्याएं आधुनिक।'

कामायनी का मूल दर्शन इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान में समन्वय लाकर मानव के विषमतापूर्ण जीवन को समरसतापूर्ण जीवन में बदलने से सम्बंधित है। इस समन्वय के अभाव में मानव के सारे कार्य-व्यापार में असंतुलन पैदा हो जाता है और वह रचना के प्रारम्भिक मनु की भांति कहीं भी शांति प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है। यह सवाल आज के मानव जीवन का सबसे बड़ा सवाल है। हीगल, मार्क्स, सार्त्र इत्यादि चिंतक अलग-अलग ढंग से आदमी के इसी असंतुलन, बिखराव और अलगाव की समस्याएँ उठाते हैं। कामायनी इसका समाधान प्रस्तुत करती है। इसका मूल समाधान है- श्रद्धा, अर्थात व्यक्ति को बुद्धि की दुनिया की अपेक्षा भावनाओं की दुनिया का सहारा लेना चाहिए। महान दार्शनिक एरिक फ्राम भी कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त करते हैं कि आज का मनुष्य बेहद अकेला है। यदि वह बिखरने से बचना चाहता है, तो उसे भावनाओं की दुनिया से जुड़ना चाहिए। ⇒ [illegible]

कामायनी की श्रद्धा, जयशंकर प्रसाद की वाणी है। यहाँ पर प्रसाद ने श्रद्धा के माध्यम से मानवता के विजयी होजाने की

की कामना की है—

"शक्ति के विद्युत कण, जिनसे जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाये।"

आज वैश्वीकरण के दौर में जब सभ्यताओं के संघर्ष की बात की जा रही है, तब प्रसाद का यह संदेश और भी ज्यादा प्रासंगिक बन पड़ता है। प्रसाद ने उस मानवता को केवल मानव तक ही सीमित नहीं रखा अपितु जगत के प्रत्येक जीव तक इसे विस्तृत कर दिया। यहाँ उनका मानवतावाद पशु, पक्षियों—प्रत्येक के अधिकार की कामना करता है—

* "ये प्राणी जो बचे हुए हैं इस अचला जगती के
उनके कुछ अधिकार नहीं क्या, ये सब ही हैं फीके।"

प्रसाद ने यह रचना 1936 ई० में लिखी और 1970 के बाद हम पर्यावरण सम्बन्धी विविध आंदोलन चलते देखते हैं। केवल इसी दृष्टि से तथ्य से इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि रचना की दृष्टि कितनी भविष्योन्मुखी तथा मानवतावादी है।

प्रसाद के ऊपर नव्य वेदांत दर्शन का गम्भीर प्रभाव था। यही कारण है कि उन्होंने सम्पूर्ण प्रकृति या जगत को महाचिति की अभिव्यक्ति माना। तात्पर्य यह कि महाचिति सुंदर है, इसलिए यह प्रकृति भी सुंदर है। अतः हमें प्रकृति की रक्षा करनी चाहिए। कुछ ऐसी ही बात रूसो ने कही थी कि 'प्रकृति की ओर लौटो'। आज जब विकासशील देश, और विकसित देश या ऐसे कहें कि पूरी दुनिया प्रकृति की रक्षा के लिए निरंतर आयोजन आहूत कर रही है, तो हमें कामायनी के संदेश की शुरुआत स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती है।

'कामायनी' की कहानी की शुरुआत "देव सभ्यता" के पतन से होती है और इस पतन का मूलभूत कारण था—भोगवाद। यद्यपि प्रसाद का दर्शन आनन्दवाद

I.A.S. ACADEMY
दृष्टि The Vision
PAGE NO.
DATE:

से प्रभावित है तथा वह निष्क्रिय कल्पना के साथ खड़ा दिखाई नहीं देता परंतु मनु पर अनियंत्रित भोगवाद को नकारे जाने का दृष्टिकोण दिखाई देता है। रचना उपभोक्तावाद के दौर में और भी ज्यादा प्रासंगिक बन गयी है क्योंकि उपभोक्तावाद अनियंत्रित इच्छाओं को जन्म देता है और मनुष्य को सभी इच्छाएँ जरूरतें महसूस होने लगती हैं। यह स्थिति किसी भी सभ्यता के भविष्य के लिए शुभ लक्षण नहीं है।

आधुनिक दौर नारीवाद का दौर है, जहाँ लैंगिक समानता के मुद्दे हावी हो रहे हैं। यद्यपि यह सही है कि प्रसाद की प्रतिनिधि पात्र श्रद्धा एक छायावादी पात्र ही है और उसमें आधुनिक नारी चेतना के गुण दिखाई नहीं देते, फिर भी नारी अधिकारों के प्रारम्भिक संकेत हमें कामायनी में मिलने शुरू हो जाते हैं — "तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की।"

यदि कामायनी के संदर्भों की प्रतीकात्मकता को आधुनिक अर्थधुनों के माध्यम से खोला जाये, तो कामायनी की प्रासंगिकता और भी ज्यादा बढ़ जाती है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नगेन्द्र ने यह स्पष्ट किया है कि इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान को क्रमशः संस्कृति, राजनीति तथा विज्ञान का प्रतीक माना जा सकता है। चूँकि राजनीति व विज्ञान का विकास संस्कृति से रहित होकर स्वच्छंद रूप से हो रहा है और यही आधुनिक समाज के मूल्यरहित हो जाने का मूल कारण है। अतः कामायनी का एक संदेश यह भी है कि ~~संस्कृति~~ राजनीति व विज्ञान को संस्कृति के नियंत्रण में परस्पर संबद्ध किया जाना चाहिए। इसी प्रकार श्रद्धा का सृजन 'कुमार' है, जिसका लालन-पालन 'इड़ा' के हाथ सौंपा गया है। यह महत्वपूर्ण प्रतीक स्पष्ट करता है कि व्यक्ति का विकास ज्ञान और भावना के समन्वय से ही सम्भव है। तात्पर्य यह है कि मानव मशीन के साथ तो रहे, परंतु अपनी मूल भावनात्मक चेतना

IAS ACADEMY
दृष्टि The Vision

से वंचित न हो।

और अंततोगत्वा कामायनी का एक शाश्वत संदेश यह भी है कि विकास की प्रक्रिया में उतार-चढ़ाव या दुःख-सुख का आना स्वाभाविक ही है। व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत जीवन में या समाज को अपने स्वाभाविक संदर्भों में कठिन स्थितियों से नहीं घबराना चाहिए—

दुःख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात।

* *

"जिसे तुम समझे हो अभिशाप जगत की ज्वालाओं का मूल
ईश का वह रहस्य वरदान, कभी मत इसको जाओ भूल।"

कुल मिलाकर, यह कहना ज्यादा उचित होगा कि प्रसाद की कामायनी आधुनिक मानव को जीवन की दृष्टि प्रदान करती है, जिसके माध्यम से मानव अपने वर्तमान जीवन को व्यर्थता से बचा सकता है तथा उसे सुंदर, उपादेय और समरसता की स्थिति तक ले जा सकता है। रचना का अंत भी तो कुछ ऐसा ही है—

"समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था
चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था"

योगेन्द्र ..

38